1044

Working Paper No. 171

PARYAVARAN AUR SATAT VIKAS

P.N. PANDE

GIRI INSTITUTE OF DEVELOPMENT STUDIES
Sector 'O', Aliganj Housing Scheme
LUCKNOW 226 024

2001

Working Paper No.171

PARYAVARAN AUR SATAT VIKAS

P.N. PANDE

GIRI INSTITUTE OF DEVELOPMENT STUDIES
SECTOR O, ALIGANJ HOUSING SCHEME
LUCKNOW 226 024

2001

पर्यावरण और सतत् विकास

डा० पी.एन. पाण्डे
गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ

अर्थव्यवस्था और पर्यावरण का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिये जो भी नीति को कार्यान्वित किया जाता है उसका प्रभाव वातावरण पर निश्चित रूप से पड़ता है। मानव ने अपनी जीवन शैली को सुधारने के लिये प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके मानव समाज अपने ही द्वारा प्रदूषिण वातावरण का शिकार बन गया है। पर्यावरण में अतिक्रमण तथा आर्थिक मंदी साथ–साथ चलते हैं क्योंकि पर्यावरण और आर्थिक उन्नति का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। पर्यावरण में दोष आ जाने से न केवल आर्थिक क्षेत्र में व्यवधान पैदा हो सकता है वरन् सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में भी अलगाववाद को बढ़ावा मिल सकता है। इस सम्भावना को देखते हुए बहुत से लेखकों ने भविष्यवाणी की है कि २१वीं शताब्दी की लड़ाई इस प्रश्न पर लड़ी जायेगी कि कौन से देश इस अत्यन्त घटती हुई एवं मंहगी प्राकृतिक संसाधनों को नियंत्रित, संचालित एवं उपयोग करेंगें।

पर्यावरण

संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में जून १९७२ में **"स्टाक होम"** में आयोजित पर्यावरण सम्मेलन ने विश्व के देशों का ध्यान पर्यावरण प्रदूषण से होने वाली समस्याओं की ओर आर्कषित किया था। पिछले करीब दो दशकों में हरित नीति व पर्यावरण नीति राजनैतिक मुद्दा बन कर औद्योगिक राष्ट्रों में उभर कर आया है। इसकी प्रतिकिया १९९२ में **'रिओ'** में हुए पृथ्वी शिखर सम्मेलन में स्पष्ट झलक कर सामने आई है जिसमें साफ–साफ स्पष्ट किया गया था कि २१वीं शताब्दी के लिये पर्यावरण संकट अन्र्तराष्ट्रीय चुनौती बन चुकी है। पर्यावरण असंतुलन को कम करने के लिये सभी देशों में कानून एवं वैधानिक अधिनियम बनाये गये तथा आम जनता ने भी आंदोलन के रूप में भी इस संकट पर अपना आकोश भी व्यक्त किया। अब पर्यावरण असंतुलन की समस्या किसी देश या राष्ट्र तक सीमित नहीं है क्योंकि विनियोग तथा उत्पादन से सम्बन्धित समस्त कार्यकम विश्व स्तरीय हो गये हैं। इस प्रकार पूंजी एवं श्रम ने राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर लिया है तथा आर्थिक बदलाव आ गये हैं। और अब पर्यावरण

की समस्या किसी निश्चित देश की न रह कर विश्वव्यापी बन गयी है। पर्यावरण की समस्या इतनी जटिल हो गई है कि पर्यावरण नीति किसी देश या विशेष गन्दी नदी या विषैला पदार्थ तक सीमित नहीं रही है। ओजोन परत में दरार, भूमंडलीय तापन, वर्षा वनों के नष्ट होने, अनियंत्रित प्रदूषण के बढ़ने, नाभकीय विध्वन्स इत्यादि ने भूमंडलीय पारिस्थितिकी के संकट को रेखांकित किया है तथा यह इस बात की तरफ इंगित करता है कि पर्यावरण संकट के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों से मानव जाति नहीं बच सकती है। विशेषरूप से विकासशील देशों में इस संकट से उभरने का महत्व कहीं अधिक है। इस प्रकार पर्यावरण से सम्बन्धित संकटों में अधिकांश संकट एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्रों तक फैलने वाले विशेषता के कारण कारगर सुधार नीति को अधिक पेचिदा बना दिया है।

पर्यावरणीय आंदोलन १९६० के दशक में कीटाणुनाशक दवाईओं, हवा एवं पानी के प्रदूषण के दोष तक सीमित था, वही १९७० के दशक में उर्जा के अधिक उपभोग, जनसंख्या की अधिकता और नाभिकीय विकीरण के संकट को पर्यावरण समस्या का दोषी माना गया। १९७० के दशक में प्राकृतिक पर्यावरण के बारे में वाद विवाद औद्यौगिक संसार तक सीमित था परन्तु इस पर्यावरणीय संकट का विस्तार १९८० के दशक में विश्वव्यापी बन गया। १९८० के दशक में इन कारणों के अलावा पर्यावरण के संकट के लिये विषाक्त अवशेष, ओजोन में गहरी दरार तथा उष्णकटिबन्धीय वर्षा वनों की बरबादी को दोषी ठहराया गया, इसके बाद १९९० के दशक में इनमें विश्वव्यापक तापन, जैविक विविधता, तथा जनसंख्या के विस्फोट की पुनर्रावृत्ति को भी इस संकट के लिये दोषी माना गया।

पर्यावरण असंतुलन का जो स्वरूप अभी दुनियां के सामने है उसका मुख्य कारण जनसंख्या में वृद्धि, गरीबी, उत्पादन का दोषपूर्ण ढंग, उर्जा का असीमित उपयोग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का शोषणीय ढांचा, विभ्रान्त बहुपक्षीय सहायता नीति, कुशलहीन औद्योगिक नीति, उपयुक्त तकनीकी की कमी एवं प्राकृतिक संसाधनों का अवैज्ञानिक दोहन रहे हैं। अगर वास्तव में आर्थिक विकास कार्यक्रम पर्यावरण विकृत के कारण है तो इसका समाधान भी इसी में निहित है। पर्यावरण क्षति न केवल अनार्थिक कल्याण के लिये अहितकर है वरन् इससे सभी आर्थिक क्षेत्रों में पैदावार में कमी होती है और इस हानि की कीमत बहुत अधिक होती है। विभिन्न देशों में किये गये अध्ययनों से पता चला है कि पर्यावरण संकट से विभिन्न देशों को उनके सकल राष्ट्रीय उत्पादन का ५ प्रतिशत से भी अधिक हानि होती है। सतत् विकास के पक्षधर विद्वानों का विचार है कि पर्यावरण हानि के स्वभाव व पैमाने को ध्यान में रखते

हुए तथा इससे होने वाले प्रतिकूल प्रभावों के पर्याप्त प्रमाणों के आधार पर यह महत्वपूर्ण है कि सतत् आर्थिक नियमों को लागू करने के लिये पर्यावरण को प्राथमिकता देना नितान्त आवश्यक है। पूर्वी यूरोपीय देशों तथा औद्यौगिक देशों को प्रदूषण से होने वाली हानियों का जो आर्थिक मूल्य चुकाना पड़ रहा है उससे पर्यावरण में प्रदूषण के कुप्रभाव का पता आसानी से लगाया जा सकता है। पर्यावरण गुणवत्ता को बनाये रखना एवं प्राकृतिक संसाधनों को बचाये रखना मूलरूप से मनुष्य के कल्याण एवं स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

पर्यावरण असंतुलन से सामाजिक मूल्य ह्रास के प्रमाण यह सलाह देते हैं कि विकासशील देश जो अभी भी विकास के प्रारम्भिक स्तर पर हैं उनको विशेष रूप से वनों के संरक्षण में अधिक ध्यान देना चाहिये अन्यथा पर्यावरण संकट उनकी अर्थव्यवस्था के लिये बड़ा घातक साबित हो सकता है। इसके अलावा इन देशों को जल प्रदूषण एवं जल प्रबन्ध, जिसका सीधा प्रभाव देशवासियों के स्वास्थ्य पर पड़ता है, की तरफ अधिक ध्यान देने की जरूरत है क्योंकि इसका प्रभाव सतत् विकास पर पड़ता है। एक प्रदूषित पर्यावरण में बेहतर समाज, संस्कृति और राजनीति का सपना असम्भव है। आर्थिक विकास में पृथ्वी से सम्बन्धित सभी चीजों (जल, वायु, भूमि और भूमि के सम्मिश्रण, जंगल और खनिज संसाधनों) के उपयोग, गलत उपयोग और अधिक उपयोग का समावेश है। प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि विकास की नीतियों का उद्देश्य होते हुए भी यह एक मात्र उद्देश्य नही है। पर्यावरण में गुणवत्ता के साथ विकास में वृद्धि तभी सम्भव है जब विकास के आयामों का पर्यावरण में पड़ने वाले प्रभावों को यथार्थ व न्याय संगत ढंग से ध्यान में रखा जाय तथा इसका समालोचनात्मक विश्लेषण करना भी जरूरी है, क्योंकि भूतकाल में विकास की नीतियों को सर्वोत्तम आर्थिक वृद्धि की नीति ने प्रभावित किया है जिसमें पर्यावरण गौण बन कर रह गया।

पर्यावरण के संकट एवं पारिस्थितिकी असंतुलन की विभीषिका को ध्यान में रख कर, प्राकृतिक संसाधनों को आने वाली मानव जाति के लिये संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से पर्यावरणविदों, वैज्ञानिकों तथा विचारकों ने एक नयी विचारधारा--सतत् विकास को जन्म दिया है। सतत् विकास पर्यावरण संकट को ध्यान में रखकर वैज्ञानिक और तकनीकी निवारण की तरफ ध्यान आर्कषित करता हैं। सतत् विकास ने राष्ट्रीय संस्थाएं, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं, विशेष रूप, संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरणीय नारों को जन्म दिया है। सतत् विकास एक सुव्यवस्थित विचारधारा है जो २१वीं शताब्दी के पर्यावरण

संकट की चुनौती के लिये उपयुक्त है। सतत् विकास इस सत्य को साबित करता है कि विश्व की आर्थिक वृद्धि को प्राप्त करने का ढंग भूतकाल में पारिस्थितिकीय रूप से सतत् नहीं था। जबकि मनुष्य जाति की पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी में ही सतत् विकास की धारण छिपी है।

सतत् विकास

सतत् विकास को विचारकों ने अलग अलग ढंग से परिभाषित किया है। कुछ विचारकों के अनुसार विशेषतर विकासशील देशों के लिये सतत् विकास का तात्पर्य औद्योगिक देशों की आर्थिक वृद्धि को प्रबल रूप से घटाना तथा विकासशील देशों को धन का न्यायोचित वितरण करना है। कुछ अन्य विचारकों के अनुसार, विशेषरूप से औद्योगिक देशों के मुखियों के लिये सतत् विकास का मतलब पर्यावरण संरक्षण के साथ केवल आर्थिक वृद्धि में सामंजस्य स्थापित करना है। वास्तव में ब्रन्टलैन्ड के रिर्पोट ने सतत् विकास को पर्यावरणाविद् तथा उद्योगपतियों के बीच वैचारिक पुल के रूप में प्रवर्तित किया है परन्तु यह विचारधारा राजनैतिक आशय के परे नहीं हैं। संरक्षण की नीति और प्रौद्यौगिकी विज्ञान, सतत् विकास को प्राप्त करने के लिये तकनीकी साधन हैं। सतत् विकास वह प्रक्रिया है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों के मूल आधार को बिगाड़ने की अनुमति नहीं दी जाती है। १६७० के दशक में कुछ विचारकों का मानना था कि आर्थिक वृद्धि एवं पर्यावरण आपस में परस्पर विरोधी है। पर्यावरणाविद् यह मान कर चले थे कि पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने में अर्थव्यवस्था व जनसंख्या की वृद्धि एक अवरोध है। परन्तु इस विचार को १६८० के दशक में आर्थिक वृद्धि और पर्यावरण को एक दूसरे के अनुरूप सम्भावित दृष्टिकोण से देखा गया और इस दशक में पर्यावरण बदलाव से होने वाले आर्थिक नुकसान तथा लाभों को मापने की तकनीकी विकास का भी जन्म हुआ।

सततता का अर्थ यह है कि समय के साथ–साथ प्रतिव्यक्ति कल्याण बढ़ता जाय। पर्यावरण में हानि के बिना सतत् आर्थिक विकास तभी सम्भव है, जब पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को सही दिशा में आर्थिक निर्णयों के साथ एकीकृत किया जाय। औद्योगिक जगत के अनुभव भी यह सुझाव देने है कि आर्थिक विकास का पर्यावरण व्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित करना अति आवश्यक है। इस प्रकार आर्थिक वृद्धि के इतिहास से यह परिलक्षित होता है कि किस प्रकार कृषि से उद्योग और उद्योग से सेवा अभिमुख अर्थव्यवस्थाएं परिवर्तित हुई है। आर्थिक क्षेत्र के इस बदलाव की मात्रा में पर्यावरण

संतुलन दुष्कर बन गया है क्योंकि इस प्रकार के आर्थिक विकास की कीमत मनुष्य असंतुलित पर्यावरण के रूप में चुका रहा है।

सतत् विकास उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें भविष्य में आने वाली मानव पीढ़ी की जरूरतों की पूर्ति को जोखिम में न डालकर वर्तमान पीढ़ी की जरूरते पूरी होती रहें। विकास की योजना में मुख्यतः जरूरतों में शिक्षा, स्वास्थ्य व पोषण का समावेश होना चाहिये। मनुष्य जाति की लगातार कल्याण में अभिवृद्धि को सतत् विकास की संज्ञा दी जा सकती है। अतः दूसरे शब्दों में, सतत् विकास उसे कहा जा सकता है जिस विकास में वर्तमान पीढ़ी के कल्याण में वृद्धि निहित हो, साथ ही साथ भविष्य में आने वाली पीढ़ी के कल्याण में गिरावट न हो। सतत् विकास उस आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया को सूचित करता है जिसमें पृथ्वी में प्राप्त सीमित प्राकृतिक संसाधनों का सावधानीपूर्वक उपयोग होता हो तथा वृद्धि वह है जो औद्योगीकरण की किस्म व गति को परिमित करता है। यह अवधारणा एक आर्थिक विकास की रणनीति है, जो भू–मंडल की पारिस्थितिकी सततता (जनसंख्या, भोजन व्यवस्था, इको–सिस्टम संसाधन, उर्जा का उपयोग) एवं सतत् अर्थव्यवस्था के मुख्य घटको के तरफ इंगित करता है। सतत् जनसंख्या का अर्थ विकासशील देशो में केवल जनसंख्या वृद्धि पर रोक नहीं है वरन् सततता, औद्यौगिक देशों में रहने वाले समद्ध लोगों के रहन –सहन से पड़ने वाले कुप्रभाव की सुव्यवस्था की मांग करता है। कुछ विचारकों का मानना है कि दुनियां के संसाधनों का उपभोग और प्रदूषण के लिये औद्योगिक देशों की जनसंख्या (१.४ विलियन) ही जिम्मेदार है। कुछ विद्वानों का मत है कि पर्यावरण पर कुप्रभाव के घटकों में जनसंख्या वृद्धि, भौतिक समृद्धि एवं प्रौद्योगिकी के कार्य प्रणाली ही मुख्य हैं। संसाधनों का सतत् उपयोग इस बात को प्रदर्शित करता है कि प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग इस सीमा या गति से हो जब तक कि उन संसाधनों का नवीनीकरण स्वाभाविक एवं प्राकृतिक प्रक्रिया से न हो जाय। अतः सतत् विकास, प्राणी जाति एवं प्राकृतिक संसाधनों के लुप्त होने की प्रक्रिया में कमी लाने के प्रयत्न को बल प्रदान करता है।

संसार में इस समय खाद्य पदार्थ इतनी प्रचुर मात्रा में पैदा हो रहा है कि पूरे विश्व की जनसंख्या के लिये पर्याप्त है। परन्तु फिर भी हर वर्ष लाखों लोग भूख से मरते हैं और करोड़ों लोग कुपोषण के शिकार होते हैं। सतत् विकास की धारणा खाद्य संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण के भरपूर पक्षधर है। भूमि सुधार व कृषि व्यवस्था ऐसी हो जो ग्रामीण क्षेत्र में रहने वालों को वहीं पर उनके

रहन– सहन को सततता प्रदान कर सके। आर्थिक नीतियों को औद्योगीकरण, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उर्जा, शहरीकरण और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मार्ग प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार अपनाना चाहिये कि वे सतत् विकास के उद्देश्यों के अनुरूप हो। विकास को सतत् रखने के लिये विकास नीतियों में प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। सतत् विकास की धारणा में सम्पूर्ण पूँजी के भंडार में यह समावेश है कि भविष्य में आने वाली पीढ़ी भी उसी प्रकार अपने विकास के लिये योग्य हो जिस प्रकार वर्तमान पीढ़ी अपने विकास के लिये उपयुक्त है। इस पूँजी भंडार में पर्यावरण जैसी सम्पत्ति (पूँजी) अति आवश्यक है जो कि मानव जीवन में सक्रिय एवं अहम् भूमिका अदा करती है।

जब १९८७ में ब्रन्टलैन्ड कमीशन की **"अवर कॉमन फ्यूचर"** रिर्पोट प्रकाशित हुई थी उस समय पर्यावरण बनाम विकास विषय के विवाद में सतत् विकास की धारणा एक केन्द्र बिन्दु के रूप में उभर कर आयी। आधारभूत स्तर पर सतत् विकास की दार्शनिकता इस बात को दावे के साथ मानती है कि भूतकाल में विकास योजना तथा आर्थिक प्रबन्धन की तुलना में पर्यावरण की किस्म व प्रकृति द्वारा प्रदत्त सेवाएं अधिक महत्वूपर्ण हैं। पर्यावरण की रूपरेखा बनाने से प्रकृति तथा निर्मित पर्यावरण के द्वारा काम का सम्पादन को अच्छी प्रकार समझने में सतत् विकास प्रतिविम्बित होता है, जिसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

१. *जीवन के सुख साधन में पर्यावरण का योगदान।*

२. *पर्यावरण का जीवन गुणवत्ता में अप्रत्यक्ष योगदान।*

३. *वास्तविक आमदनी (सकल राष्ट्रीय उत्पादक) में पर्यावरण का प्रत्यक्ष योगदान।*

४. *आर्थिक कार्य–कलापों में पर्यावरण निवेश का प्रत्यक्ष योगदान।*

५. *मानव जीवन के ढांचा बनाये रखने में पर्यावरण की भागीदारी।*

विस्तृत रूप से प्राकृतिक पर्यावरण तीन मुख्य आर्थिक कार्यों का सम्पादन करता है। व्यक्तिगत उपयोगिता की प्रत्यक्षपूर्ति, आर्थिक प्रकिया साधनों की पूर्ति तथा उन सेवाओं की पूर्ति जो जीवन सहायक हैं। इन कार्यों का प्रत्यक्ष संवद्धता इस बात में है कि सतत् विकास की व्याख्या किस ढंग से की गई है। सतत् विकास उस विकास की परिभाषा है जिसमें वर्तमान पीढ़ी के कल्याण में बढ़ोत्तरी

निहित है साथ ही साथ भावी पीढ़ी को होने वाले कल्याण में कमी न आये। पर्यावरण क्षति न केवल अनार्थिक कल्याण को प्रभावित करता है वरन् यह पैदावार में होने वाले हानि को भी स्पष्ट करता है।

साधारण भाषा में किसी देश की सकल राष्ट्रीय उत्पाद, किसी वर्ष में उस देश की अर्थव्यवस्था का मापक है, को आर्थिक उन्नति का संकेतक कहते है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद को सामाजिक कल्याण का हमेशा द्योतक नहीं कहा जा सकता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि सकल राष्ट्रीय उत्पादन से होने वाले जनकल्याण को तभी सतत् विकास की संज्ञा दी जा सकती है जब तक राष्ट्रीय उत्पादन की प्रक्रिया पर्यावरण को ठेस न पहुँचाए। साधारणतः जब हम सकल राष्ट्रीय आय की बाजार मूल्य से आंकलन करते हैं तो पर्यावरण की उपेक्षा करते हैं। अतः उत्पादन करने में जो भी क्षति पर्यावरण को हुई है उसका मूल्य सकल राष्ट्रीय उपज (उत्पादन) से घटाना चाहिए। परन्तु वास्तविकता यह है कि शुद्ध राष्ट्रीय उपज का आंकलन करते समय मनुष्य द्वारा निर्मित की गई पूँजीगत साधनों पर मूल्य ह्रास (डेप्रिशियेशन) को ही सकल् राष्ट्रीय आय में से कम करते हैं, जबकि सकल राष्ट्रीय उपज (उत्पादन) प्राप्त करने में नैर्सगिक (प्राकृतिक)सम्पत्ति का भी मूल्य ह्रास होता है। उदाहरणार्थ, खनिज, तेल, कोयला, और खनिज का स्टाक तथा वन सम्पत्ति का भी ह्रास होता है।

सतत्ता की पहली व मूलभूत शर्त यह है कि समस्त पूँजी के भंडार भविष्य के लिये सुरक्षित रखे जायें। कुछ विचारकों का मानना है कि अगर प्राकृतिक संसाधनों के नुकसान पर अन्य प्रकार की पूँजी का निर्माण होता है तो इस सतत् विकास को असतत् नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इससे समस्त पूँजी के भंडार में कमी नहीं होती है। परन्तु कम से कम पर्यावरण सम्पत्ति को उस सीमा तक नष्ट होने से बचाये रखा जाय जहाँ पर बनाई गई निर्मित पूँजी से उस हानि की भरपाई हो सकती हो और जो जीविकोपार्जन के लिये आवश्यक है।

सतत्ता नापने के विस्तृत रूप से दो संकेतक है। किसी काल में सम्पूर्ण पूँजी के भण्डार में परिवर्तन मापने के लिये मौद्रिक संकेतक की सहायता ले सकते हैं। मौद्रिक संकेतकों की अनुपस्थिति में पर्यावरण सम्पत्ति में परिवर्तन से सतत्ता को मापा जा सकता है। सतत् आमदनी का बढ़ना आर्थिक वृद्धि का प्रबल द्योतक है। अगर वृद्धि और विकास समानान्तर चल रही है तो सतत् आमदनी ही सतत् विकास का परिचायक है। तब शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का मापना ही सतत् आमदनी मापने

का उपयुक्त पैमाना है। भविष्य में होने वाली वास्तविक आमदनी को घटाये बिना, वर्तमान समय में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन ही सही आमदनी है।

सततता, प्राकृतिक संसाधन (जिन्हें नवीन नहीं कर सकते हैं) की निर्भरता को कम करने की तरफ संकेत करता है तथा नवीनीकरण करने योग्य संसाधनों का दोहन उसी स्तर तक करने की सलाह देता है जहाँ उनकी पुर्वावस्था की प्राप्ति प्रकृति के द्वारा हो और मानवीय प्रभाव इकोसिस्टम पर कम से कम हो। कुछ विचारकों का कहना है कि सततता शायद पर्यावरण मूल्य का अर्न्तभाग है जो औद्योगिक समाज के दीर्घकालीन जीवन योग्यता की तरफ मार्ग प्रशस्त करता है। और वे इस नतीजे पर पहुँचे है। अगर समय पर कदम न उठाये तो औद्योगिक समाज की जीवन योग्यता संदेहपूर्ण है। वर्तमान समय में सतत् विकास राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय पर्यावरण नीति का केन्द्र बिन्दु है। औद्योगिक एवं विकासशील देशों के सर्वमान्य रणनीति के तहत, कुछ विद्वान सतत् विकास को आर्थिक वृद्धि में हानि हुए बिना, पर्यावरण संरक्षण के लिये गुणकारक मानते हैं। अन्य अवयवों के अलावा, औद्यौगीकरण, विज्ञान, प्रौद्यौगिकी, उर्जा, शहरीकरण, जनसंख्या और अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार मुख्य घटक हैं जो पर्यावरण संतुलन बनाये रखने एवं सतत् विकास प्राप्त करने में बड़े महत्वपूर्ण हैं। कुछ विचारकों का मानना है कि सतत् विकास की अवधारणा सम्बन्धित जो भी रूपरेखा प्रस्तुत किया जा रहा है वह पारिस्थितिकी (इकोलॉजी) समस्या का पूर्ण समाधान नहीं है।

पर्यावरण संकट और सतत् विकास के बारे में विद्वान जो भी अलग–अलग विचार रखते हैं। वास्तविकता यह है कि सभी देश पर्यावरण संकट से पीड़ित ही नहीं वरन् चिन्तित भी हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि सतत् विकास का विचार काल्पनिक एवं आदर्शवादी है परन्तु जो भी हो, सतत् विकास का विचार आर्दशक उद्देश्य से कहीं अधिक है। फिर भी इस सम्बन्ध में सत्य यह है कि सतत् विकास की विचारधारा औद्योगिक एवं पर्यावरणीय संकट का समाधान करने के लिये एक अच्छी शुरूवाद है। यह धारणा सामूहिक पर्यावरणीय जिम्मेदारी के विचार को आगे बढ़ाने में मदद कर सकता है, और यह विचार भविष्य में औद्योगिक सतत् विकास की व्यवस्था के लिये भी एक योजना पद्धति का आधार साबित हो सकता है। यह लगता है कि निकट भविष्य में अर्थशास्त्रियों एवं पर्यावरण विदों के सामने, सतत् विकास प्राप्त करना एक चुनौती का विषय रहेगा।

---------XXXXX---------